षष्ठ प्रकरण

विचारधारा

काव्य और विचार : भाव और विचार -- ये दो मानवता के मूल्य हैं । जीवन के तमाम अच्छे बुरे चित्रों को देखते देखते जीवन के सम्बन्ध में मानव की एक दृष्टि बन जाती है और यदि वह कवि या लेखक होता है तो अपनी दृष्टि को वाणी प्रदान करता है, यदि कवि या लेखक नहीं है तो उन अनुभवों को वाणी नहीं दे सकता । कवि का सम्बन्ध भावानुभूति से है । लेकिन यह आशय नहीं है कि कवि चिन्तन शून्य होता है। भावधारा के ही समानान्तर कवि में विचार या चिन्तन की भी एक धारा बहती है जिसके सहारे वह जगत् या जीवन के सम्बन्ध में कुछ सोचता रहता है । कवि की अनुभूतियां अंधे के हाथ लगी बटेर नहीं है । अनुभूतियों के ही मूल्य पर कवि अपने को बेच देता है। काव्य के माध्यम से वह जीवन के सम्बन्ध में कुछ कह जाता है जिसे हम कवि का संदेश या उपदेश कहते हैं । लेकिन कवि का उपदेश कुछ और ही प्रकार का होता है ।वह प्रचारक की तरह अपने सिद्धान्तों की ढोल नहीं पीटता है । उपदेशक की तरह सूखी बचनावली भी नहीं पेश करता है । काव्य प्रकाशकार मम्मट ने काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए कहा है --

काव्यं यशसेऽर्थं कृते व्यवहार विदे शिवेतर क्षतये ।
सद्यः पर निर्वृत्तये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे ।।[१]

काव्य यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान एवं मंगल के अतिरिक्त कान्ता की तरह उपदेश प्रदान करता है । यह कान्ता उपदेश क्या है ? उपदेश तो गुरु भी देता है । किन्तु कान्ता और गुरु दोनों के उपदेश में अन्तर है । गुरु का उपदेश आदेश है और कान्ता का उपदेश हृदय में गड़ जाते हैं । गुरु की बात कभी-कभी मन से उतर जाती है लेकिन कान्ता की बात कान्ता से भी अधिक प्यारी होती है । कान्ता के ही आग्रह ने राम को कंचनमृग के पीछे दौड़ा दिया । काव्यप्रकाशकार के कथन का आशय यह है

---

१. काव्यप्रकाश, उल्लास १

कि काव्य का उपदेश सरस,मधुर,हृदयग्राही एवं हितकर होता है । हमारे यहां उपदेश या नीति के ग्रन्थों की भी एक परम्परा है । नीतिकार कवियों की भी एक पीढ़ी है । यद्यपि नीति प्रतिपादन काव्य का लक्ष्य नहीं है । काव्य मे तो रसानुभूति के उपकरण जुटाए जाते हैं । सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है । लेकिन सच्चा कवि जीवन की उपेक्षा नहीं करता । वह सब कुछ जीवन से ही लेता है और मानवता के हित के लिये सब कुछ छोड़ जाता है । इसलिए किसी कवि की काव्य रमणीयता पर विचार करते हुए उसके काव्य में व्यक्त नीति उपदेश या विचार तत्व पर भी विचार करना चाहिए । यहांठाकुर की विचारधारा का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है --

जीवन सम्बन्धी आदर्श :

(१) भाग्यवाद -- ठाकुर आस्थावान व्यक्ति थे.। भाग्यवाद के सिद्धान्त में उनका पूरा विश्वास था । जितना सुख या दुःख मिलना होता है, उतना मिलकर ही रहता है । उसपर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता । सब रोना धोना बेकार हो जाता है। देखिये --

को करि सोच वृथा ही मरै हरि होने वही जो तुम्हें करने है[१]।

(२) भक्ति -- ठाकुर में ईश्वरानुरक्ति की भी भावना थी । वे जगह जगह 'हरिगुनगान' का उपदेश देते हैं । देखिये --

ठाकुर कहत ब्रजचन्द चन्द मुखी राधा
वृन्दावन वीथिन में हरि गुन गाव रे।
बीति जात उमर भंडार तन रीति जात
बीति जात काल के हवाले होत बावरे[२]।।

(३) अहिंसा -- सृष्टि में जितने जीव हैं, सबको जीने का अधिकार है । लेकिन मत्त मानव ऐसा कब होने देता है । वह सब जीवों को अपने ही जीवन का साधन समझता

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १०
२. वही, छंद सं० १६

हैं । ठाकुर कवि का सन्देश है -- स्वयं जीवो और दूसरों को जीने दो ।

ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखौ
प्रेम निरसंक रसरंग विहरन देव ।
विधि के बनाए जीव जेते हैं जहां के तहां
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव[1] ।।

(४) नास्तिकों पर दाभ -- ठाकुर नास्तिकों के जीवन से क्षुब्ध थे --

हाय उन लोगन भों कौनगो उपाय जिन्हैं
लोक को न डर परलोक को न डर है[2] ।

(५) अनासक्ति -- संसार एक तमाशा है । इसलिए वैराग्य या अनासक्ति के रस में मस्त रहना चाहिये । अपने मन की बात को किसी से नहीं कहनी चाहिए । दुनिया में अपराधी को भी अपराधी नहीं समझना चाहिये । भाग्य का दोष देना चाहिए। भाग्य का दोष देने पर पश्चाताप का मर्मान्तिक कांटा मन से निकल जाता है । मनुष्य का सबसे बड़ा पौरुष यही है कि वह जीवन की विकट परिस्थितियों में भी धैर्य न छोड़े --

जानि परो जग पेखनो है यहि ते यहि मांहि छके रहने हैं ।
बात निरन्तर अन्तर की अपने दिल की न कहूं कहने हैं ।।
ठाकुर दोष लगाइए कौन को पाइए भाग लिखे लहने हैं।
काम इन्हैं मरदानगी को सिर आन परे सुलिए बहने हैं[3] ।।

काव्य संबंधी आदर्श -- नीचे लिखे गये सवैये में ठाकुर का काव्य सम्बन्धी आदर्श निहित है । ~~यथेकिन~~

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावे ।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।। क्रमशः- -

१, ठाकुर ठसक, छंद सं० २४
२, वही, छंद सं० १२६
३, वही, छंद सं० १३४

ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राज सभा में बड़प्पन पावै ।
पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै ।।[1]

पहली पंक्ति में कवि ने काव्य के शिल्प-पक्ष पर ध्यान दिया है । ललित शब्दावली एवं सुन्दर छन्द विधान की ओर संकेत है । उसके बाद कवि ने कविता के विषय तत्व की ओर संकेत किया है। कविता का सबसे बड़ा विषय है राग तत्व या प्रेम। वह प्रेम चाहे मानव के प्रति हो चाहे ईश्वर के प्रति । 'बात अनूठी' में उक्ति वैचित्र्य का संकेत है । सवैए की अंतिम पंक्ति में ठाकुर ने 'चित्त हरने' की बात कही है । कविता में चित्त को हरने वाला तत्व क्या है ? निश्चय ही यह कल्पना तत्व है । भाव यदि हृदय को आर्द्र करता है तो कल्पना मुग्ध करती है ।

काव्यालोचन : ठाकुर ने महाकवि तुलसी की वाणी की अभिवंदन अपनी वाणी के द्वारा किया है --

ठाकुर कहत धन्य तुलसी तिहारी बानी
अकह कहानी रससानी सुरसतु है ।
चंद सी, चमेली सी, गिरा सी गंगधार कैसी
मघा मेघ मई राम जस बरसत है ।।[2]

युग संस्कृति : मानव संस्कृति का निर्माण उन्हीं तत्वों से हुआ है जो तत्व उसे पशु से भिन्न कर देते हैं । मनुष्य पशु के स्तर से जितना ही ऊपर उठेगा, उसकी संस्कृति उतनी ही ऊंची होगी । वह पशु प्रवृत्तियों के जितना ही निकट जायेगा उसकी संस्कृति उतनी ही निम्न स्तरीय होगी। विश्व में केवल एक संस्कृति है और वह है मानव संस्कृति । इस मानव संस्कृति के मूल में मानवता के वे मूल्य हैं जो मनुष्य को एकत्व की ओर अग्रसर करते हैं । यह सब होते हुए भी जहां तक यथार्थ का सम्बन्ध है मानव संस्कृति के अतिरिक्त भी संस्कृतियां हैं । प्रत्येक देश

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १३
२. वही, छंद सं० १८५

या प्रत्येक जाति की अलग संस्कृति है जिसके भीतर उसके कुछ जातीय मूल्य सुरक्षित रहते हैं। जातीय मूल्य से आशय उस जाति के उन नियमों या कार्य व्यापारों से है जिनके आधार पर एक विशिष्ट संस्कृति उसका मूल्यांकन कर सकेगी। अब विचारणीय यह है कि कवि का इस संस्कृति से क्या सम्बन्ध है ?

वास्तव में, कवि समाज का सबसे बड़ा संवेदनशील प्राणी है। कोई संस्कृति स्वस्थ है या रुग्ण इसकी पहचान कवि ही करता है। कवि में सतोगुण की प्रधानता होती है। उसके मलिन संस्कार विनष्ट होते हैं। यही कारण है कि वह स्वस्थ या रुग्ण संस्कृति की पहचान कर लेता है। रुग्ण संस्कृति का उपचार करना भी कवि का ही काम है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह कर्तव्य भ्रष्ट कहा जायेगा। समाज की संस्कृति के उन्नयन का भार उसी पर है। संस्कृति के रुग्ण तत्वों के प्रति कवि विद्रोह करता है। अपने विद्रोह में वह कहां तक सफल होता है यह दूसरी बात है। कवि सत्य का द्रष्टा होता है। इसलिए वह जल्दी झुकता नहीं है, झुकाने का प्रयास करता है। यदि संस्कृति स्वस्थ है तो कवि उसके शरीर में रक्त वृद्धि करता है।

व्यक्ति के लिए जो महत्व व्यक्तित्व का है समाज के लिए वही महत्व संस्कृति का है। उस समाज में साहित्य की क्या परम्परा है ? चित्र कला की क्या उपलब्धि है ? ईश्वर-चिन्तन की क्या सीमा है ? सौन्दर्य सम्बन्धी रुचि क्या है ? उस समाज में मानव का मानव से क्या सम्बन्ध है ? इन सब प्रश्नों को उत्तर केवल संस्कृति दे सकती है। इस प्रकार संस्कृति किसी समाज के सर्वांगीण विकास या ह्रास का इतिहास प्रस्तुत करती है। कवि और संस्कृति के सम्बन्ध के परिणामस्वरूप काव्य में तत्कालीन समाज के मानव की प्रवृत्तियां झलक मारती हैं। उन मानवों के रूप में वह युग कविता में उतर आता है।

ठाकुर की भी कविता में युग संस्कृति ने अवतार लिया है --

दंगी दगाबाजन की बाढ़ी है अधिक थाप
ज्ञान ध्यान वारन की बात वेप्रमाना है। क्रमशः --

पूछत न कोऊ कवि कोविद प्रवीनन को
नमक हरामी को हजारन खजाना है ।।
ठाकुर कहत कलि काल को प्रभाव देखो
झूठन की बातन पै जगत दीवाना है ।
बड़े बड़े सूवा तेऊ जात पाप डूबा देखि
जीव अति ऊबा या अजूबा कारखाना है[1] ।।

उपर्युक्त कवित्त से स्पष्ट है कि उस युग की सांस्कृतिक चेतना म्लान हो चली थी । बड़े बड़े राजा पाप पंक में डूब चुके थे । वासना का ज्वारभाटा समाज की रीति-नीति को, काम और अर्थ दोनों की उपासना पराकाष्ठा पर थी । धर्म के अभाव में काम कामुकता है और अर्थ अर्थपरायणता । धार्मिक स्थान भी व्यभिचार के केन्द्र बन चुके थे । मठ और मंदिर देवदासियों और मुरलियों की छन-छन से गूंजते रहते थे[2] । इस युग में कवियों और कलाकारों की दशा शोचनीय हो चली थी[3]। परन्तु शाहजहां के उपरान्त इन लोगों के लिये राजकीय आश्रय का द्वार भी बन्द हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कवि और कलाकार भी दिल्ली के दरबार को छोड़कर विभिन्न राजाओं , सूबेदारों , नवाबों और रईसों के दरबार में बिखर गये। स्वभावत: उनकी भी ~~सम्मानिक~~ स्थिति बहुत गिर गई ।

चारों ओर अराजकता का साम्राज्य था । श्रमिक वर्ग की दशा सबसे अधिक शोचनीय हो चली थी । एक श्रमिक की पत्नी अपनी सखी से अपनी दशा कहती है--

ए री मेरी वीर कन्त कौन पै कमान जाइ
राजन की मतिऊ पै चले ना उपाव री ।
तन मन छीन भयो मनुवा मलीन भयो
मनसा निकल कल पावत ना बावरी[4] ।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १४३
२. डा० नगेन्द्र कृत रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६
३. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० ६
४. ठाकुर ठसक, छंद सं० १४६

रीतिकालीन राजनीति एवं साहित्य की शोचनीय दशा पर विचार करते हुए विद्वान आलोचक डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है -- "जहांगीर की विलास प्रियता ने शासन की शक्ति कम कर दी थी । खजाने से तनख्वाह देने के बजाय जागीर देने की प्रथा बढ़ी । फलतः अनेक जागीरदार हुए जिन्होंने अपने वैभव की खूब वृद्धि की। कविगण संरक्षण पाने के लिए इन्हीं जागीरदारों और राजाओं की शरण में जाने लगे । भक्ति काल के प्रारम्भ में धर्म की जो मर्यादा सन्तों और कवियों के द्वारा सुरक्षित हो चुकी थी उत्तर काल में वह कवियों को सम्मान नहीं दे सकी । इसलिए वे अपना यश और सम्मान बढ़ाने के लिए राज दरबारों का आश्रय खोजने लगे"[१]।डा० वर्मा ने रीतिकालीन साहित्यकार की जिस शोचनीय स्थिति का उल्लेख किया है उसी स्थिति का निवेदन तत्कालीन साहित्यकार होने के कारण करुण शब्दावली में ठाकुर ने किया है --

पूछत न कोऊ कवि कोविद प्रवीनन को
नमक हरामी को हजारन खजाना है[२] ।

रीतिकाल की राजनीति पर विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है-- मुगल बादशाहों के असंख्य युद्धों, बहुमूल्य इमारतों, उनके और उनके अमीरों के विलास वैभव सभी का भार अन्त में जाकर इन किसानों पर ही पड़ता था । सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े हुए थे । इन्हीं के आंसू और रक्त की बूंदें जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थीं[३] ।

जमाने की पतित राजनीति का जमाने के साहित्य पर क्या विशाक्त प्रभाव पड़ता है इस पर विचार करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है "विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के लगभग धार्मिक काल की पवित्रता नष्ट होने लगी थी । उसमें शृंगार के अत्यधिक प्रभाव ने वासना के बीज बो दिए थे । राधा और कृष्ण की विनय अब कवित्त और सवैयों में प्रकट होकर नायिका और नायक के भेदों की कौतूहल-

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० ६९७ : डा०रामकुमार वर्मा
२. ठाकुर ठसक, छंद सं० १४३
३. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १३

वर्धक पहेलियां सुलझाने लगी थी[१]। डा० वर्मा ने रीतिकालीन काव्य की जिस कुप्रवृत्ति का संकेत किया है उसी कुप्रवृत्ति से क्षुब्ध ठाकुर ने लिखा है--

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित कीबो खेल करि जानो है[२]।

ठाकुर ने काव्य की परिभाषा करते हुए कहा है --

प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै[३]।

निश्चय ही यह प्रेम पंथ और हरिनाम कथा वही बातें हैं जिनका कि डा० वर्मा ने रीतिकाल में अभाव बतलाया है और जो रीतिकालीन वासनात्मक प्रवृत्ति एवं 'लौकिक जन गुण गाथा' के विरोधी तत्व हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ठाकुर ने अपने युग के समाज एवं साहित्य की रुग्ण प्रवृत्तियों को पहचान लिया था और अपने काव्य में इन प्रवृत्तियों के प्रति आक्रोश की भावना उन्होंने अभिव्यक्त की है। कोई भी सहृदय कवि इतना ही कर सकता है और इतना ही कर देना बहुत बड़ी बात है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६१६ :डा०रामकुमार वर्मा
२. ठाकुर ठसक, छंद सं० १२
३. वही, छंद सं० १३